प्राचीन भारत में देश की अेकता

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, एम. ए., पीएच्. डी., डी. लिट्

भौगोलिक एकता राष्ट्रीय एकता का मूल आधार है और राष्ट्रीय एकता उसका आवश्यक फल है। पुराणों के भुवन कोश नामक अध्यायों में सप्तद्वीपी भूगोल का वर्णन मिलता है। मेरु को केन्द्र में मानकर उसके उत्तर में उत्तर कुरु, पूर्व में भद्राश्व, दक्षिण में भारतवर्ष और पश्चिम में केतुमाल इन चार वर्षों की कल्पना की गई है। इन चारों का सम्मिलित नाम जम्बूद्वीप था। अर्वाचीन भूगोल के अनुसार मेरु पामीर के ऊंचे पठार की संज्ञा है जो पृथ्वी रूपी कमल के केन्द्र में कर्णिका के समान स्थित है।[1] उत्तर कुरु साइबेरिया और भद्राश्व चीन है। केतुमाल पामीर के पश्चिम में फैला हुआ वह प्रदेश है जिसमें चक्षु-वक्षु या वर्तमान औक्सस नदी बहती है। मेरु के दक्षिण की ओर स्थित हिमालय और दक्षिणी समुद्र के बीच का भूप्रदेश पुराणों के अनुसार एक भौगोलिक इकाई मानी जाती थी। उसी की संज्ञा भारतवर्ष थी। जैसा पूर्व में कहा जा चुका है, भुवनकोश के लेखक भारतवर्ष की उत्तरी और दक्षिणी सीमाओं के विषय में निश्चित और स्पष्ट उल्लेख करते हैं। उत्तर में जहां तक गंगा के उत्तरी स्रोत या शाखा नदियां हैं और दक्षिण में समुद्र तट पर जहां कन्याकुमारी है वहां तक भारत की सीमाएं है। इसके पूर्व की सीमा पर किरात जाति के लोग बसे थे जिन्हें आजकल की भाषा में मौन-ख्मेर कहा जाता है। भारत के पश्चिम में यवन अर्थात् यूनानी बसे हुए थे[2]।

यवनों से यहां तात्पर्य बाल्हीक (आधुनिक बल्ख, प्राचीन बैक्ट्रिया) के यूनानी राजाओं से है जिन्होंने तीसरी शती ई. पू. के मध्य भाग में मौर्य साम्राज्य के निर्बल होनेपर यवन राज्य की वही नींव डाली थी। इससे यह भी ज्ञात होता है कि भारतवर्ष के भौगोलिक विस्तार की यह कल्पना शुंग काल से पूर्व ही स्थिर हो चुकी थी। पाली साहित्य के दीघनिकाय ग्रंथ में भारत की भौगोलिक और राजनैतिक एकता का बहुत ही सुन्दर उल्लेख मिलता है—

"तो कौन है जो उत्तर में आयताकार और दक्षिण में शकटमुख के समान संकीर्ण इस महा-पृथ्वी को सात बराबर भागों में बांट सकता है? महागोविन्द को छोड़ कर भला और दूसरा कौन ऐसा करने में समर्थ है? कलिंग में दन्तपुर, अश्मक में पोतन, अवन्ति में माहिष्मती, सौवीर में रोरुक, विदेह में मिथिला, अंग में चम्पा, और काशी में वाराणसी इन्हें महागोविन्द ने बसाया[3]।"

---

१. जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्य संस्थितः। तस्यापि मेरुर्मैत्रेयमध्ये कनकपर्वतः।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः॥ विष्णुपुराण २/२।६,१०।

२. आयतो ह्याकुमारिक्यादागंगाप्रभावाच्च वै। पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः॥ वायु ४५।८१–८२। "आयतस्तु कुमारीतो गंगायाः प्रवहावधिः।" भारतवर्ष की यह भौगोलिक परिभाषा थी।

३. को नु खो भो पहोति इमं महापठविं उत्तरेन आयतं दक्खिणेन सकटमुखं सप्तधासमं सुविभत्तं विभजितुं ति।
तत्र सुदं मज्झे रेणुस्य रञ्ञो जनपदो होति। दन्तपुरं कलिंगानां अस्सकानं च पोतनं।
माहिस्सती अवन्तीनं सोवीरानं च रोरुकं। मिथिला च विदेहानं चम्पा अंगेसु मापिता।
बाराणसी च कासीनं एते गोविन्दमापिता ति॥ (दीघनिकाय, महागोविन्दसुत्त)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस उल्लेख में ये बातें महत्त्वपूर्ण हैं। यहां समस्त भारतवर्ष के लिये महापृथिवी शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन भारतवर्ष की राजनैतिक परिभाषा में किसी राजा के अपने जनपद के राज्य विस्तार को पृथ्वी कहते थे जिस कारण राजा पार्थिव कहलाता था। एक-एक जनपद का स्वामी राजा वहां का पार्थिव होता था। किन्तु एक जनपद की सीमा से आगे बढ़ कर समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के लिये महा-पृथिवी शब्द का प्रयोग होने लगा था। पाणिनि की अष्टाध्यायी में महापृथिवी के लिये ही सर्वभूमि संज्ञा का प्रयोग हुआ है। सर्वभूमि के राजा को सार्वभौम कहते थे।[1] आपस्तम्ब श्रौत सूत्र (३०।१।१) के अनुसार सार्वभौम राजा को ही अश्वमेध करने का अधिकार था। जो सार्वभौम होता था वही चक्रवर्ती कहलाता था। महाभारत के अनुसार दौःषन्ति भरत अश्वमेधों के करने से सार्वभौम चक्रवर्ती हुआ।

दीघनिकाय में दूसरा महत्त्वपूर्ण उल्लेख महापृथिवी या भारतवर्ष की भौतिक आकृति के सम्बन्ध में है। अब तक इसके तीन प्रकार मिले है, कूर्म संस्थान, कार्मुक संस्थान और शकटमुख संस्थान। वराह मिहिर ने बृहत्संहिता में भारतवर्ष के संस्थान (अं० कनफ्युगरेशन) को कूर्म की आकृति वाला कहा है। उस कूर्म संस्थान के नौ भेद किए हैं, अर्थात् १. मध्य भाग २. पूर्व दिशा में फैला हुआ मुख ३. दक्षिण-पूर्व दिशा में दाहिना पैर ४. दाहिनी कुक्षि ५. दक्षिण-पश्चिम का पिछला पैर ६. पुच्छ या पुट्ठों का भाग ७. उत्तर-पश्चिम का उपरला पैर ८. बाईं ओर की उपरली कुक्षि और ९. पूर्व-उत्तर दिशा का अगला पैर। इस कूर्म-संस्थान के प्रत्येक भाग में जो जनपद या देश हैं उनके नाम भी अलग अलग गिनाए गए हैं।

भारतवर्ष के संस्थान की दूसरी कल्पना पुराणों के भुवनकोश नामक अध्यायों में मिलती है। जहां इस भूमि को कार्मुक या धनुषाकृति कहा गया है। दक्षिण का घूमा हुआ भाग जो समुद्र के भीतर घुसा हुआ है धनुष का मुड़ा हुआ डंडा है। उत्तर का हिमालय उस डंडे के ऊपर खिंची हुई डोरी है, जिसकी तान से डंडे का पृष्ठ भाग मानों झुक गया है।

कूर्म संस्थान और धनुषाकृति संस्थान, इन दोनों कल्पनाओं से भी अधिक प्रत्यक्ष दीर्घनिकाय का उल्लेख है जिसमें भारत के उत्तरी मैदान और पर्वतों के मिले हुए भाग को आयताकार कहा गया है। इसके अग्रभाग में छकड़े के लम्बे और संकीर्ण मुख की भांति दक्षिण भारत का भूभाग निकला हुआ है। देश के लिये शकटमुखी संस्थान की यह कल्पना इतनी प्रत्यक्ष और सचित्र है जैसे किसी अर्वाचीन मान-चित्र में भारतवर्ष की आकृति को देखकर कोई उसका वर्णन कर रहा हो।

भारत-भूमि की इस प्रत्यक्षसिद्ध भौगोलिक एकता को आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो समर्थन प्राप्त हुआ और उसकी जैसी पूर्ति हुई उसका वर्णन अतीव रोचक विषय है। राजनैतिक क्षेत्र में भी इस मौलिक एकता ने आदर्श के रूप में सदा लोगों को प्रेरित और आन्दोलित किया। यह एक तथ्य है कि हमारी यह भूमि प्राकृतिक सीमाओं के विभाग से अनेक जनपदों में विभक्त थी। इस प्रकार के लगभग दो सौ जनपदों की सूची पुराणों के भुवनकोश नामक अध्यायों में प्राप्त होती है। जनपदों का यह बंटवारा जनता की स्वाभाविक स्थानीय आकांक्षाओं की पूर्ति करता था। वह जनता के लिये स्थानीय एकता का सुदृढ़ बन्धन था। राज्यों के ऐतिहासिक विघटन के समय भी जनपदीय जीवन की इकाई ठोस चट्टान की भांति स्थिर रहती थी। जनपदों के रूप में भारतीय जीवन की माला हिमाद्रि से कुमारी तक गूंथी गई थी। जनपदों को हम इस माला के स्थायी मनके कह सकते हैं। प्रत्येक जनपद की पृथिवी स्थानीय जीवन

---

१. सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ। ५।१।४१; तस्येश्वरः ५।१।४२; सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषा और विद्या संबन्धी पहलुओं से हरी-भरी बनी रहती थी। जिस प्रकार यूनान देश में वहां की संस्कृति की धात्रियां "सिटी-स्टेट्स" या पौर-राज्य थे ठीक उसी प्रकार भारतवर्ष के जनपद भी सांस्कृतिक और राजनैतिक इकाइयों के रूप में स्थानीय विश्वजनता की माताएं थी।

किन्तु जनपदों की इस विविध शृंखला को एकत्र मिलाकर किसी महान् राजनैतिक संगठन का आदर्श भी वैदिक काल से मिलने लगता है। इस सम्बन्ध में प्रत्येक राजा की ऐन्द्र महाभिषेक (राज्यासन पर आसीन होने के अभिषेक) के समय पढ़ी जाने वाली प्रतिज्ञा को हम नहीं भुला सकते। इसमें कहा है :—

"जो ब्राह्मण पुरोहित यह इच्छा करे कि अभिषिक्त होने वाला क्षत्रिय सब विजयों को जीते, सब लोकों को प्राप्त करे, सब राजाओं में श्रेष्ठता प्राप्त करे, एवं साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, राज्य, महाराज्य, आधिपत्य, इन विभिन्न प्रकारों से अभिषिक्त होकर परम स्थिति प्राप्त करे, चारों दिशाओं के अन्त तक पहुंच कर आयुपर्यन्त सार्वभौम बने, और समुद्रपर्यन्त पृथिवी का एकराट् बने, उस क्षत्रिय को इस ऐन्द्र महाभिषेक की शपथ दिलाकर राज्य में उसका अभिषेक करना चाहिए।"[1] इस प्रतिज्ञा में हम उन अनेक शब्दों की गूंज सुनते हैं जिनसे भारत का राजनैतिक इतिहास आन्दोलित हुआ है। भारतीय इतिहास में जितने राजाओं का अभिषेक वैदिक पद्धति से हुआ सबके लिये इसी प्रतिज्ञा का उच्चारण हुआ होगा। देश की भौगोलिक अेकता को इसमें स्पष्ट राजनैतिक एकता के साथ मिलाया गया है। समन्तपर्यायी सार्वभौम और समुद्रपर्यन्त पृथिवी का एकराट् ये दोनों आदर्श देशव्यापी राजनैतिक चेतना के सूचक हैं। इसी से प्रेरित होकर शकुन्तला ने कहा था :—

'हे दुष्यंत' मेरा यह पुत्र शैलराज हिमवन्त का शिरोभूषण धारण करने वाली इस चतुरंत पृथिवी का पालने करने वाला बनेगा।' हम पहले कह चुके हैं कि भरत का अजित चक्र लोक में गूंजता हुआ सब राजाओं को अपने वश में लाकर समस्त पृथ्वी पर फैल गया। इसके कारण भरत सार्वभौम चक्रवर्ती कहलाए।[2] भरत से आरम्भ होकर यह परम्परा और ये आदर्श और भी कितने ही राजाओं में अवतीर्ण हुए।

ऊपर लिखी हुई कई राज्यप्रणालियों में परस्पर भेद थे। "सार्वभौम" शब्द सर्वभूमि या महापृथिवी के राज्य की ओर संकेत करता है। सार्वभौम राजा को चक्रवर्ती भी कहा जाता था। जिसके रथचक्र के लिये अपने जनपद से बाहर कोई रुकावट न हो उसे चक्रवर्ती कहा गया जान पड़ता है। पीछे उस बढ़े हुए राजनैतिक सीमाविस्तार या भूभाग के लिये चक्र शब्द का प्रयोग होने लगा। सार्वभौम पद्धति में यह आवश्यक था कि राजा दूसरे राजाओं के साथ युद्ध करके या तो उन्हें अपना वशवर्ती बना ले और या बलपूर्वक उनका राज्य अपने राज्य में मिला ले। यही भरत ने किया था, और कालान्तर में समुद्रगुप्त ने भी इसी नीति का अवलम्बन किया। आरम्भिक अवस्था में प्रायः प्रत्येक देश में भूमि अनेक जनपदीय राजाओं में बंटी हुई होती है, उनमें से प्रत्येक की अपनी स्वतंत्र सत्ता रहती थी। उनके बीच में कोई एक शक्तिशाली राजा उठ खड़ा होता, और भरत के समान ही सबके ऊपर अपना चक्र स्थापित करके उस राजनैतिक

---

१. स य इच्छेदेवंवित्क्षत्रियमयं सर्वा जितीर्जयेतायं सर्वाँल्लोकान्विन्देतायं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यमतिष्ठां परमतां गच्छेत साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समंतपर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुष आ अन्तादापरार्धात्पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति तमेतेनैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वा अभिषिंचेत। (ऐतरेय ब्राह्मण, ८।१५)

२. तस्य तत्प्रथितं चक्रं प्रावर्तत महात्मनः, भास्वरं दिव्य माजितं लोकसञ्चादनं महत्। स विजित्य महीपालां-श्चकारं वशवर्तिनं, स राजा चक्रवर्त्यासीत् सार्वभौमः प्रतापवान् (आदि० ६९।४५-४७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकता का प्रादुर्भाव करता, जिसे सर्वभौम या चक्रवर्ती राज्य कहते हैं। महाभारत से ज्ञात होता है कि आधिपत्य या आधिराज्य शासन प्रणाली वह थी जिसमें अन्य राजाओं से कर ग्रहण करके उन्हें अपने केन्द्र में पूर्ववत् सुरक्षित रहने दिया जाता था। पाण्डु ने कुरु जनपद की राज्यशक्ति का विस्तार करते हुए मगध, विदेह, काशी, सुह्म, पुण्ड्र आदि जनपदों को अपना करद बना लिया था (आदि० १०५।१२–२१) और स्वयं अधिराज्य का भोक्ता कहलाया।

इन दोनों से अधिक कठोर साम्राज्य का आदर्श था जिसे हम जरासन्ध के जीवन में चरितार्थ देखते हैं। सम्राट् अपने जनपद की सीमा का विस्तार करता हुआ और किसी भी राज्य को सुरक्षित न रहने देता था। सभापर्व में सम्राट् को सबके हड़पने वाला कहा गया है (सम्राज् शब्दो हि कृत्स्नभाक्, १४।२)। साम्राज्य का आधार बल था (सभा. १४।१३, बलादेव साम्राज्यं कुरुते)।

साम्राज्य से विपरीत पारमेष्ठ्य प्रणाली थी जो गणराज्यों में देखी जाती थी। यह शासन कुलों के आधार पर बनता था। उसमें प्रत्येक घर का ज्येष्ठ व्यक्ति "राजा" कहलाता था (गृहे गृहे हि राजानः, सभा. १४।२) जैसे शाक्यों में और लिच्छवियों में प्रत्येक क्षत्रिय राजा कहलाता था। वे सब मिलकर अपने आपस में किसी एक को श्रेष्ठ मान लेते थे। वही उस समय उस राज्य का अधिपति होता था।[1] जिस प्रकार साम्राज्यशासन का आधार बल था उसी प्रकार पारमेष्ठ्य या गणशासन का आधार शम अर्थात् शान्ति की नीति थी।[2] इस देश में किसी समय कुलों पर आश्रित इस शासनप्रणाली का बहुत प्रचार था और जनता इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। कुलशासनप्रणाली में दूसरे कुल या व्यक्ति के अनुभाव या व्यक्ति गरिमा का सम्मान किया जाता था एवम् जनपद के भीतर दूर दूर तक जनता का श्रेय या कल्याण दिखाई पड़ता था (सभा. १४।३।४)। साम्राज्य में यह श्रेय अधिकतर राजपरिवार या राजधानी के लोगों तक ही सीमित कर रह जाता था।

भारतीय इतिहास का रंगमंच इन विभिन्न राज्यप्रणालियों की लीलाभूमि रही है। देश की एकता का भाव न केवल धर्म से अग्रसर हुआ बल्कि राजाओं की राजनीति के द्वारा भी समय समय पर उसकी स्थापना होती रही। जिस प्रकार यूनान में स्पार्टा और एथेन्स अन्य पौर राज्यों के ऊपर प्रबल हो गए थे वैसे ही अपने देश में बहुत कशमकश के बाद मगध का साम्राज्य ऊपर तैर आया। बृहद्रथवंशी जरासंध से जो प्रवृत्ति शुरू हुई वही शिशुनाग और नन्दवंशी राजाओं के समय में आगे बढ़ी। पहले तो इस प्रकार के विस्तार के विरुद्ध जनता में प्रतिक्रिया भी थी किन्तु पीछे लोग इसके प्रति अभ्यस्त और सहिष्णु बन गए। शिशुनागवंशी अजातशत्रु ने लिच्छवि गण की परवाह न करके उन पर भी हमला कर दिया। ऐसे ही नन्दवंश के नन्दिवर्धन और महापद्म नन्द ने अनेक जनपदीय इकाइयों का अन्त करके मगध साम्राज्य की प्रबल सत्ता स्थापित की।

इस प्रवृत्ति का सबसे विकसित रूप चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य में दृष्टिगोचर हुआ। ऐतिहासिक काल में सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त के राज्य में हम कई प्राचीन आदर्शों को चरितार्थ हुआ देखते हैं। उसका राज्य अफगानिस्तान से लेकर दक्षिण में मैसूर तक फैला हुआ था। जिसे सर्वभूमि या सर्वपृथिवी कहा जाता था।

---

१. एवमेवाभिजानन्ति कुले जाता मनस्विनः। कश्चित्कदाचिदेतेषां भवेच्छ्रेष्ठो जनार्दनः। (सभा. १४।६)

२. शममेव परं मन्ये न तु मोक्षाद् भवेच्छमः (सभा. १४।५)।

गणों की जनता कुछ इस प्रकार सोचती थी—राजनीति में शम का अवलम्बन ही सच्चा शम है। मोक्ष-साधन से जो शम मिलता है वह कोई शम नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके अन्तर्गत सच्चे अर्थों में सारे देश की गिनती होने लगी। समन्तपर्यायी या चतुरंत इन प्राचीन शब्दों का जो अर्थ था उसे भी हम मौर्य साम्राज्य के चार खूंट विस्तार में पूर्ण हुआ पाते हैं। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में समुद्रपर्यन्त पृथिवी के एकराट् की जो कल्पना मिलती है वह भी मौर्यशासन की सच्चाई बन गई। देश के सौभाग्य से किसी गाढ़े समय में मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ। उसकी स्थापना से देश यूनानियों के उस धक्के से बच गया जिसने वाहीक के संघों या पंजाब और उत्तर पश्चिम के गण राज्यों को झकझोर डाला था।

मौर्य साम्राज्य का मधुर फल दो रूपों में प्रकट हुआ। एक तो इस से समस्त देश में समान संस्थाओं की स्थापना हो गई। शासन के कर्मचारी, विभाग, आय के साधन, कर-व्यवस्था, यातायात के मार्ग, दण्ड और व्यवहार (दीवानी और फौजदारी) की न्यायव्यवस्था, नाप-तौल और मुद्राएं, इन सब बातों में देश ने एकसूत्रता का अनुभव किया। इससे जनता में जीवन को एकरूपता प्रदान करने वाले बन्धन दृढ़ हुए। विष्णुगुप्त का अर्थशास्त्र साम्राज्य के मंथन से उद्भूत उस एकरूपता का परिचायक महान् ग्रंथ है। उदाहरण के लिये, मौर्य साम्राज्य में जो सिक्के चालू थे उनके बहुत से निधान (जखीरे) तक्षशिला से लेकर राजस्थान, मगध, कलिंग, मध्य भारत, महाराष्ट्र, आन्ध्र, हैदराबाद, मैसूर आदि प्रदेशों में पाए गए हैं। चांदी की इन आहत मुद्राओं की तौल सब जगह ३२ रत्ती थी। उन पर बने हुए रूप या चिन्ह भी सब जगह एक से पाये गए हैं। ज्ञात होता है शासन की किसी केन्द्रीय टकसाल में वे ढाले गए थे। अशोक के शिलास्तम्भ भी इसी प्रकार पाटलिपुत्र की केन्द्रीय कर्मशाला में तैयार होकर दूरस्थ स्थानों को भेजे गये थे।

मौर्य साम्राज्य का दूसरा सुफल यह हुआ कि उससे देश में अन्तर्राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई। भारतवर्ष की जनता अपने चारों ओर के देशों से सच्चे अर्थ में परिचित हुई। भारतवर्ष से जाने वाले लम्बे राजमार्ग और अधिक लम्बे होकर दूसरी राजधानियों से जुड़ गए जिनके द्वारा यहां का व्यापारिक यातायात विदेशों के साथ बढ़ा। उन्हीं मार्गों से विदेशी दूतमंडल साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र की ओर मुड़े और भारतवर्ष से अनेक धर्म-प्रचारक विदेशों में गए। सम्राट् अशोक भारतीय प्रणाली के सबसे अधिक सुन्दर और मधुर फल कहे जा सकते हैं। देहरादून के समीप यमुना के किनारे कालसी के शिलालेख में इन पांच विदेशी राजाओं के नाम गिनाए गए हैं। १. सीरिया और पश्चिमी एशिया के राजा अंतियोक (२६१–४६ ई. पू.) २. मिस्र के तुलमय या टालेमी (२८५–२४७ ई. पू.), ३. मेसीडोनिया के अंतिकिन (२७६–२३६ ई. पू.), ४. साइरीनी (उत्तरी अफ्रीका) के मग (३००–२५० ई. पू.) और ५. कोरिन्थ के अलिकसुंदर या अलेक्ज़ेंडर (२५२–२४४ ई. पू.)। यह तेहरवां शिलालेख लगभग २५२–२५० ई. पू. में उत्कीर्ण कराया गया जब कि ये सब राजा एक साथ जीवित रहे होंगे। अशोक के भेजे हुए दूतमंडल इनके दरबारों में शांति और मानवता का मैत्री-संदेश लेकर गए थे। उस समय के सभ्य संसार को अपने साथ लेकर आगे बढ़ने का सत्संकल्प अशोक के मन में आया था बौद्ध आख्यानों में जो अशोकावदान के नाम से प्रसिद्ध है। और भी उल्लेख हैं जिनसे ज्ञात होता है कि अशोक के प्रयत्नों से भारत का सम्बन्ध तिब्बत, बर्मा, सिंहल, स्याम, कम्बोज आदि देशों से जुड़ गया और भारत से धर्म और संस्कृति की धाराओं का यशःप्रवाह इन पड़ोसी देशों में भी फैल गया।

इस प्रकार पहली बार वह कल्पना ऐतिहासिक सत्य के रूप में उभर कर सामने आ गई जिसने जम्बू द्वीप के देशों की सुनहली माला में भारत को मध्यमणि बना दिया। इसका वह ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और वरिष्ठ रूप आने वाली शताब्दियों में और भी निखरता गया। सचमुच भारत की पृथिवी अट्ठारह द्वीपों की अष्टमंगलक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माला पहनने वाली बन गई।[1] गुप्तों के स्वर्णयुग में भारत का वह दिव्य भास्वर तेज मध्य एशिया से हिन्देशिया तक (जो उस समय भारतीय भूगोल में द्वीपान्तर के नाम से प्रसिद्ध थी[2]) और चीन से ईरान तक सर्वत्र छा गया था। सत्यमेव उस स्वर्णयुग में इस देश की वह सबसे महती धर्म विजय थी। बाहर इस सिद्धि के प्राप्त कराने में देश के भीतर का गुप्तों का एकतंत्र शासन और सुसमृद्ध राज्य भी कुछ कम उत्तरदायी न रहा होगा। कालिदास ने एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वम् के आदर्श में (रघु. २।४७) अपने युग में भावों को ही व्यक्त किया है। भौगोलिक दृष्टि से यह प्रभुत्व अपने देश के भीतर ही सीमित था किन्तु सांस्कृतिक आदर्श भारत के विश्वराज्य को चरितार्थ करता था। उस महाकवि ने अपने युग की इस सचाई की ओर अन्य प्रकार से भी संकेत किया है। पुराणों ने जहां एक ओर हिमालय को भारत के धनुषाकृति संस्थान की तनी हुई प्रत्यंचा कहा है वहां कालिदास ने उसे पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच में व्याप्त पृथिवी का मानदण्ड कहा है।[3] यदि हिमालयरूपी मानदण्ड के दोनों सिरों पर उत्तर-दक्षिण की ओर रेखाओं का विस्तार किया जाय तो उनसे जो भूखंड परिच्छिन्न होगा उसे ही गुप्तकाल में भारतीय संस्कृति का या उस युग के शब्दों में धर्मराज्य का भू-विस्तार समझना चाहिए। गुप्तकाल में हिमवान् सचमुच भारत की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई का माप-दण्ड था। पूर्व में किरात देश और पश्चिम में अफगानिस्तान में हिमालय के भाग हिन्दूकुश बाल्हीक तक हिमवन्त का विस्तार था। उतना ही उस समय भारतवर्ष था। किन्तु स्थूल भौगोलिक विस्तार पर आग्रह इस देश की पद्धति नहीं रही। यहां तो यशविस्तार या संस्कृति-विस्तार जो पर्यायवाची हैं, महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। उसका संकेत करते हुए कालिदास ने लिखा कि वह यश पर्वतों को लांघकर और समुद्रों को पार करके उनके उस पार पहुंच गया, पाताल और स्वर्ग में भी वह भर गया, देश और काल में उस यश के विस्तार की कोई सीमा न रही।[4] आज मध्य एशिया और हिन्दएशिया के पुरातत्त्व गत अवशेष कालिदास के कथन की प्रत्यक्ष व्याख्या करते हैं।

इस सांस्कृतिक विस्तार की सच्ची प्रतीति उस युग की जनता के मन में थी। इसका सबसे पक्का प्रमाण इस बात से मिलता है कि उस युग में भारतवर्ष का भौगोलिक अर्थ ही बदल गया। भारत के अन्दर बृहत्तर भारत का भी परिगणन होने लगा। गुप्तयुग के पुराण लेखकों ने भारत की निजी भूमि के लिये कुमारी द्वीप नाम प्रचलित किया और उसके साथ पूर्वी द्वीपसमूह या द्वीपांतरों को मिलाकर बृहत्तर भारत के अर्थ में "भारत" इस शब्द का प्रयोग शुरू किया। अपने युग के इस आदर्श का बौद्ध साहित्य में भी उल्लेख हुआ है। ललितविस्तर में एक कल्पना है कि कोई दिव्य चक्र-रत्न धर्म विजय करते हुए चारों दिशाओं में घूमता है। 'इस प्रकार वह मूर्धाभिषिक्त धर्मात्मा राजा पूर्व दिशा को जीतता है। पूर्व दिशा को जीत कर पूर्व समुद्र में प्रविष्ट होकर उसे भी पार कर जाता है। इसी प्रकार वह

---

१. अपि च तवाष्टादशद्वीपाष्टमंगलकमालिनी मेदिनी अस्त्येव विक्रमस्य विषयः, हर्षचरित में बाण की कल्पना, उच्छ्वास ६, पृ. १९५।

२. प्राचीन जावा की भाषा में इसे भूम्यन्तर और नुसान्तर कहा गया है। जावा की भाषा में नुसा=द्वीप।

३. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ (कुमारसम्भव १।१)

४. आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णं भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम्।
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम्।। (रघुवंश ६।७७)

बाण ने भी कालिदास के स्वर में स्वर मिलाते हुए दिलीप के विषय में लिखा--
भ्रूलतादिष्टाष्टादश द्वीपे दिलीपे (हर्षचरित, उच्छ्वास ६, पृ. १७६)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा को भी जीतकर उन उन समुद्रों का अवगाहन करता है।[५]'

वस्तुतः इस युग के साहित्य में भारत के भीतरी और बाहरी भूप्रदेश की भौगोलिक एकता और पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध बार बार उभर आते हैं। इन्दुमती के स्वयंवर में देश के सब राजाओं को एकत्र कर कवि ने मातृभूमि का एक समुदित चित्र उपस्थित किया है। पुष्पपुर के मगधेश्वर, अंगदेश (मुंगेर, भागलपुर) के राजा, महाकाल और शिप्रा के स्वामी अवन्तिनाथ, माहिष्मती के अनूपराज, मथुरा, वृन्दावन और गोवर्धन के शूरसेनाधिपति, महेन्द्र पर्वत और महोदधि के स्वामी कलिंगनाथ, उरगपुर और मलयस्थली के पांड्यराज, एवं उत्तर कोसल के अधीश्वर, इन सब को इन्दुमती के स्वयंवर में एकत्र लाकर कवि मगधेश्वर के लिए कहता है : कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् (रघुवंश ६।२२); और सहस्रों राजा भी चाहे हों, यह भूमि मगध के सम्राटों से ही राजन्वती कहलाती है। देश की राज्यशक्तियों में उस समय मगध का जो सर्वोपरि स्थान था उसका यथार्थ उल्लेख कवि के शब्दों में है। विदर्भ जनपद की राजकुमारी के स्वयंवर का क्षितिज उत्तरकोसल से दक्षिण के पांड्य देश तक विस्तृत था। इससे स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवहार और राजनैतिक सम्बन्धों की दृष्टि से अपनी आंतरिक सीमाओं के भीतर भारत की भूमि दृढ़ इकाई बन चुकी थी।

दूसरी ओर जब हम विदेशों के साथ भारत के सम्बन्धित हो जाने की बात सोचते हैं तो भारतीय साहित्य में उसकी भी साक्षी उपलब्ध होती है। इसका अच्छा उदाहरण दिग्वर्णन के रूप में पाया जाता है। गुप्तकाल में जब ईरान से जावा तक भारत का यातायात फैल गया था उस समय के सांयात्रिक नाविकों अथवा स्थलमार्ग से यात्रा करने वाले सिद्धयात्रिक सार्थवाहों के उपयोग के लिये ये दिग्वर्णन संकलित किए गए होंगे। इनमें चारों दिशाओं में भारत के भीतर और बाहर के प्रसिद्ध स्थानों और देशों का एक ढर्रा सा पाया जाता है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर इस प्रदक्षिणाक्रम से ये दिग्वर्णन मिलते हैं। इस दिग्वर्णन के कई रूप साहित्य में पाए गए हैं। एक रूप बुधस्वामिन् के बृहत्कथाश्लोकसंग्रह नामक ग्रंथ में है। रामायण के किष्किंधा कांड में सुग्रीव द्वारा चारों दिशाओं में सीता की खोज के लिये बन्दरों के भेजे जाने के प्रसंग में भी दिग्वर्णन आया है। वहां पूर्व दिशा का वर्णन करते हुए जावा के सप्तराज्यों का उल्लेख है। ये राज्य तीसरी-चौथी शती से पहले जावा में न थे। महाभारत के वनपर्व में गालव-चरित के अन्तर्गत गरुड़ ने गालव से दिग्वर्णन किया है। उसमें पश्चिम दिशा में हरिमेधस् देव का उल्लेख है जिसकी ध्वजवती नामक कन्या पर सूर्य मोहित हो गए थे। तब वह सूर्य के आदेश से आकाश में ही स्थित हुई। ये हरिमेधस् देव ईरान की पहलवी भाषा में हरमुज कहलाते थे। सभापर्व के दिग्विजय पर्व के अन्तर्गत भी एक दिग्वर्णन है जिसमें भारतवर्ष की भौगोलिक इकाई को बढ़ाकर विदेशों के साथ मिलाया गया है। वहां उत्तर दिशा की ओर दिग्विजय करते हुए अर्जुन की यात्रा पामीर (कम्बोज) और मध्य एशिया के उस पार के प्रदेश (उत्तरकुरु) तक जा पहुंचती है जहां ऋषिक नाम से विख्यात यू-चि

५. एवं खलु राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तो पूर्वां दिशं विजयति। पूर्वा दिशः विजिताः पूर्वं समुद्रमवगाह्य पूर्वं समुद्रमवतरित दक्षिणो दिशं पश्चिमामुत्तरो दिशं च विजित्य उत्तरं समुद्रमवगाहते (ललितविस्तर पृ. १५)

इसी भावना का समर्थन बाण की इस कल्पना से होता है—हर्ष का कड़कता हुआ दाक्षिण्य भुजदंड प्रार्थना कर रहा था कि मुझे अठ्ठारह द्वीपों की विजय करने के अधिकार पर नियुक्त कीजिए। (नियुज्य तत्कालस्मरणा स्फुरणेन कथितात्मानमिव चाष्टादशद्वीपजेतव्याधिकारे दक्षिणं भुजस्तम्भ, हर्षचरित, उच्छ्वास ७, पृ. २०३)। बाण ने इस युग में जनता के विदेशों में यातायात को देखते हुअे "सर्वद्वीपान्तरसंचारी पादलेप" इस साहित्यिक अभिप्राय का उल्लेख किया है अर्थात् पैरों में कुछ ऐसा लेप लगाया जिससे सब द्वीपान्तरों में घूम आने की सामर्थ्य प्राप्त हो, हर्षचरित, उच्छ्वास ६, पृ. १९४)। वहीं समुद्रयात्रा से लक्ष्मी संप्राप्ति (अब्भ्रमणेन श्रीसमाकर्षणं, पृ० १८९) का भी उल्लेख है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाति का मूल आवास स्थान था। यहीं गोबी और मंगोलिया के बीच में कहीं चन्द्रद्वीप था जहां से निकास होने के कारण भारत के कनिष्क आदि शक-तुषार राजा चन्द्रवंशी कहलाते थे। इस प्रकार भारत की स्थिति उस पट-मंडप के समान थी जिसके दीप्तिपट चारों दिशाओं में प्रकाश और वायु का आवाहन करने के लिये उन्मुक्त हो गए थे। भारत के जल और स्थल मार्गों पर इस समय अभूतपूर्व चहलपहल दिखाई देती थी। एक ओर राजदरबारों में विदेशी दूतमंडलों के आने-जाने का तांता लगा रहता था[1], तो दूसरी ओर भारतीय समुद्र तट के पोतपत्तन नानादेशीय व्यापारियों से भरे रहते थे। जब इन दूत-मंडलों का आदान-प्रदान हो रहा था, उस समय अंतर्राष्ट्रीय जगत् में भारत की ख्याति किसी जनपद के रूप में न थी, बल्कि उसे एक महान् देश की प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। भारतीय दूत, भारतीय विद्वान्, इन सब पर भारत के एक खंड की सीमित छाप न थी। वे अपने साथ समग्र देश की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा लेकर विदेशों में पहुंचते थे। जनता के मनोराज्य में देश की सत्ता, एक ओर अविकल थी। तभी देश के प्रत्येक भाग से झुंड के झुंड ब्राह्मण दूसरे भागों में जाकर बस जाते थे और राजाओं द्वारा उनके लिये भूमि और जीविका का प्रबन्ध किया जाता था। समतट के ब्राह्मण राजकुल में जन्मे हुए शीलभद्र विद्वान् नालन्दा विश्वविद्यालय में आकर वहां के आचार्य हो गए। कश्मीर के विद्वान् बिल्हण (११ वीं शती) कल्याणी के चालुक्य वंशी सम्राट् विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६–११२७) के राजकवि के रूप में विद्यापति पदवी से सुशोभित हुए। बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरित काव्य में करहाट की राजकुमारी चन्द्रलेखा के स्वयम्वर में देश का जो चित्र खींचा है वह कालिदास के इन्दुमती स्वयम्वर का ही परिवर्तित रूप है। वहां मंडप में अयोध्या, चेदि, कान्यकुब्ज, चर्मण्वती, तटदेश, कालंजरगिरि, गोपाचल, मालव, गुर्जर पाण्ड्य, चोल देशों के राजा उपस्थित हुए थे। वह स्वयम्वर एक देश की समान रीति-नीति की ओर संकेत करता है।

मध्यकाल की राजनीति जिस प्रकार देश की एकता व्यक्त करती है वह विक्रमादित्य चालुक्य, राजचोल, राजेन्द्रचोल, सिद्धराज, भोज, कर्ण, गांगेयदेव, गोविन्दचन्द्र, विग्रहपाल आदि पचासों सम्राटों की दिग्विजयपद्धति, राज्यप्रणाली, गुणग्राहकता, धार्मिक जीवन, पारिवारिक जीवन, आदि सदृशी विशेषताओं से प्रकट होता है। सर्वत्र एक समान आदर्श और एक सी जीवनविधि पाई जाती है, जैसे देश-व्यापी किसी

---

१. चीन की अनुश्रुतियों के अनुसार चीन सम्राट् हो-ती के समय (८९–१०५ ई०) में भारतीय राजदूत चीन गये। मिलिन्द पन्ह के अनुसार, चीनी सम्राट हिवंती के दरबार में महाक्षत्र रुद्रदामा के दूत सिन्धु प्रान्त से उपहार लेकर गए थे। लगभग १९० ई० में अलेक्जैंड्रिया के शासक द्वारा भेजा हुआ पैंटेनस नामक राजदूत भारत आया। लगभग ३३६ ई० में सम्राट कौंस्टैंटाइन के यहां भारतीय प्रणिधिवर्ग पहुंचा। ५१८ ई० में उत्तरी वाईवंश की चीनसम्राज्ञी द्वारा भेजा हुआ सुङ्गयुन् नामक दूत पश्चिमी भारत आया। ५३० ई० में भारतीय राजदूत उपहार लेकर कुस्तुंतुनियां के सम्राट जुस्टोनियन के दरबार में पहुंचे। ५४१ ई० में भारतीय राजदूत चीनी सम्राट् ताइत्सुङ्ग के दरबार में गए। ६०७ ई० में सिंहल के हिन्दू शासक के दरबार में चीनी सम्राट् का भेजा हुआ दूत मंडल आया। चालुक्य सम्राट् पुलकेशिन् द्वितीय के दरबार में ईरानी सम्राट् खुसरूपरवेज (५९५-६२५) का भेजा हुआ प्रणिधिवर्ग आया। ६४१ में हर्ष का ब्राह्मण राजदूत चीन गया और ६४५ ई० में चीन सम्राट् का प्रणिधिवर्ग सम्राट हर्ष के दरबार में आया। बाण ने तो हर्षचरित में स्पष्ट लिखा है कि सब देशों से आये हुए दूत मंडल हर्ष के दरबार में ठहरे हुए थे (सर्वदेशान्तरागतैश्च दूतमंडलैरुपास्यमानम्, हर्ष० उच्छ्वास २, पृ० ६०)। यह सिलसिला इसी प्रकार आगे भी जारी रहा। सुमात्रा और यवद्वीप के शासक शैलेन्द्र वंशी राजा बालपुत्रदेव ने मुंगेर के राजा देवपालदेव के पास दूत भेजकर नालंदा विश्वविद्यालय में चातुर्दिश भिक्षुसंघ के लिये पांच गांव दान में देने का ताम्रपट प्राप्त किया जो नालन्दा महाविहार की खुदाई में प्राप्त हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विराट् परिषद् ने राजा और प्रजा के चरितों को एकता के सांचे में ढाल दिया हो। उन चरितों के बाह्यरूप और मन की प्रेरणाएं सर्वत्र समान हैं।

शासनप्रणाली की जिस एकरूपता की ओर देश बढ़ रहा था उसका एक अच्छा उदाहरण समस्त देश में भूमि का बन्दोबस्त और कर-निश्चिति के रूप में मिलता है। इसे "ग्रामसंख्या" कहा जाता था। इसका अर्थ अंग्रेजी के हिसाब से लैंड सर्वे किया जा सकता है। शुक्रनीति से यह सूचित होता है कि इस प्रकार की एक ग्रामसंख्या गुप्तकाल के लगभग की गई थी, जिसमें प्रत्येक ग्राम, मण्डल, प्रदेश आदि द्वारा देय भूमिकर चांदी के कार्षापण सिक्कों में निश्चित कर दिया गया था। ये संख्याएं नामों के साथ शिलालेखों में जुड़ी हुई मिलती हैं, जैसे ऐहोली के लेख में महाराष्ट्र के तीन भागों की ग्रामसंख्या अर्थात् भूमि का लगान ९९ सहस्र कहा गया है। मध्यकाल अर्थात् दशमी शती के लगभग फिर इस प्रकार कर बन्दोबस्त किया गया जिसका उल्लेख "अपराजित पृच्छा" नामक ग्रन्थ में आया है। वहां स्पष्ट कहा है कि ग्रामसंख्या, देश-प्रमाण और राजाओं का मान तीनों का आधार "रूप" था (ग्रामाणां च तथा संख्या देशानां च प्रमाणतः। राज्ञां च युक्तिमानं च अलंकारैस्तद्रूपतः, अपराजित पृच्छा ३८।३)। यहां रूप शब्द का अर्थ रुपया अर्थात् आजकल की परिभाषा में जमाबन्दी है। राजाओं का युक्तिमान अर्थात् छुटाई-बड़ाई के आधार पर दरबार आदि में उनका सम्मान इसी बात पर आश्रित था कि उनके राज्य की आय क्या थी। सामन्त, माण्डलिक, महामाण्डलिक, नृप, महाराज, आदि पद आप के हिसाब से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने जाते थे। इसी हिसाब से सामन्त, माण्डलिक या राजा लोग मुकुट आदि आभूषण भी भिन्न भिन्न प्रकार के पहिनते थे जिससे प्रतिहारी भी स्वागत सत्कार के समय उन्हें पहिचान लेते थे। इसका उल्लेख "मानसार" नामक ग्रन्थ में आया है (अध्याय ४९)। अपराजित पृच्छा में देश के मुख्य मुख्य भागों की ग्रामसंख्या या जमाबन्दी दी हुई है; जैसे कान्यकुब्ज ३६ लाख, गौड़ १८ लाख, कामरूप ९ लाख, मण्डलेश्वर १८ लाख, कार्तिकपुर ९ लाख, चोल देश ७२ लाख, दक्ष राज्य ७॥ लाख, उज्जयिनी १८ लाख ९२ हजार, शाकम्भर १ लाख २५ हजार, लाट, गुर्जर, कच्छ, सौराष्ट्र संमिलित २ लाख, मरुकोटि और मरुमण्डल (मेवाड़, मारवाड़) ३॥ लाख, सिन्धुसागर ३॥ लाख, खुरसाण या खुराषाण ४० लाख, त्रिगर्त २ लाख, अहिराज्य १२ लाख, गुणाद्वीप ६॥ लाख, जलन्धर ३॥ लाख, कश्मीर-मण्डल ६६१८०। इस प्रकार इन २१ राज्यों की आय की ग्राम-संख्या या भूमि कर ६६९३३१८० होता है। स्कन्दपुराण के माहेश्वर-खण्ड के अन्तर्गत कुमारिका खण्ड के अध्याय ३९ में कुमारी द्वीप अर्थात् भारत देश की ग्रामसंख्या का योग ९६ करोड़ कहा गया है, किन्तु प्रत्येक के लिये जो ग्रामसंख्याएं वहां दी हैं, उनका योग २८,८०,८९,००० होता है। कुमारिका खण्ड में तो पत्तन अर्थात् समुद्रपत्तन, जलपत्तन, या पोतपत्तनों में चुंगी से होनेवाली आय भी ७२ लाख कही गई है (३९।१६३)। अवश्य ही ये संख्याएं तभी सम्भव हैं जब समस्त देश में राजनैतिक और आर्थिक एकसूत्रता जीवन की वास्तविक सचाई बन चुकी है। मध्यकालीन हिन्दू राज्यों की इन संख्याओं की परम्परा में ही "आईन-अकबरी" की वह संख्या है, जिसमें इलाहाबाद, आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद, बिहार, बंगाल, दिल्ली, काबुल, लाहोर, मुलतान, मालवा साम्राज्य के इन बारह सूत्रों की कुल आय ३६२९७५५२४६ दाम अर्थात् ९,०७,४३,८८१ रुपये कही गई है। पीछे से बिरार, खानदेश और अहमदनगर इन तीन सूत्रों के और आ जाने से राज्य की आय में वृद्धि हुई होगी। ये आंकड़े ऊपर लिखे हुए इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि देश के भिन्न भिन्न राज्यों में बंटे होने पर भी

---

१. भारत का विदेशों के साथ प्रणिधि-संबंध, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, विक्रमांक उत्तरार्ध, संवत् २००१, पृ. २७०–२७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामूहिक चेतना विद्यमान थी, जिसके अनुसार खुरासान, बलख और पामीर प्रदेश से लेकर लंका तक के भूभाग को एक ही देश अर्थात् कुमारी द्वीप के अन्तर्गत माना जाता था। कुमारिका खण्ड की सूची में चार खूंटों के बताने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण नाम दिए हैं, जैसे नेपाल, गाजनक (गाजना या गाजनी-) कम्बोज, बाल्हीक (बल्ख बुखारा), कश्मीर, ब्राह्मणवाहक-बहमनवा या ब्राह्मणाबाद या सिन्ध (राज, शेखर का ब्राह्मणवह), सिन्धु, अति सिन्धु (अर्थात्-सिन्धु के इस पार उस पार के देश) कच्छ, सौराष्ट्र, कोंकण, कर्नाट, लंका, सिंहलद्वीप, पाण्डय, पांसुदेश (उडीसा का पांसु राष्ट्र), कामरूप, गौड़, बरेन्दुक (बारेन्द्री, पूर्वबंगाल), किरात विजय, (आसाम-तिब्बत की सीमा का प्रदेश), अश्वमुख देश (किन्नरों का देश रामपुर बुशहर)—इस प्रकार भारत देश की परिक्रमा इन नामों में आ जाती है।

इस देश का इतिहास गंगा की प्रवाह हिमालय के ऊंचे शिखरों से उतर कर गंगासागर तक प्रवाहित होता रहा है। कहां एक ओर वैदिक काल और कहां दूसरे छोर पर मध्यकालीन जीवन और संस्कृति? किन्तु यह निश्चय है कि भारतीय संस्कृति अनन्त भेदों के बीच में भी मौलिक एकता और समानता की स्वीकृति और आग्रह के उस व्रत से कभी विचलित नहीं हुई जिसे उसके मनीषी विप्रों ने ऋग्वेद में ही उसके लिये स्थिर कर दिया था—

समान मंत्र, समान समिति,
समान मन–समान सबका चित्त।
सबके लिये समान मंत्र अभिमंत्रित।
सबकी समान हवि से,
यह अग्नि होत्र प्रवृत्त॥
समान सबकी प्रेरणा, समान सबके हृदय,
समान सबके मानस, अतः साथ सबकी स्थिति॥ १॥

समानो मंत्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभिमंत्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ (ऋ. १०।१२।३–४)

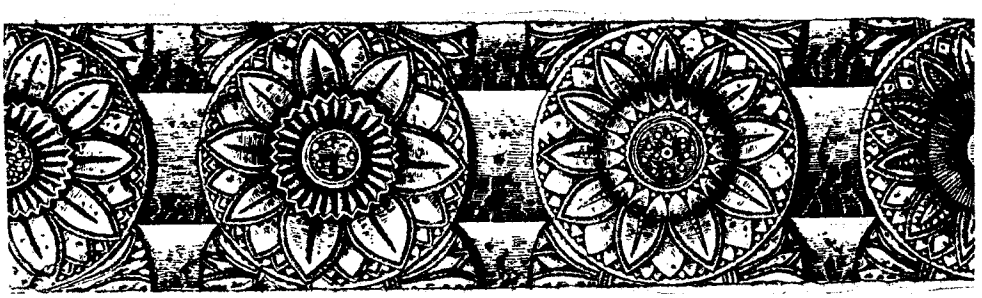

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ भगवान, उदयगिरि गुफा, भीलसा
Image of Pārśvanātha, Udayagiri cave, Bhīlsa

तसवीर : श्री० आर० भारद्वाज]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

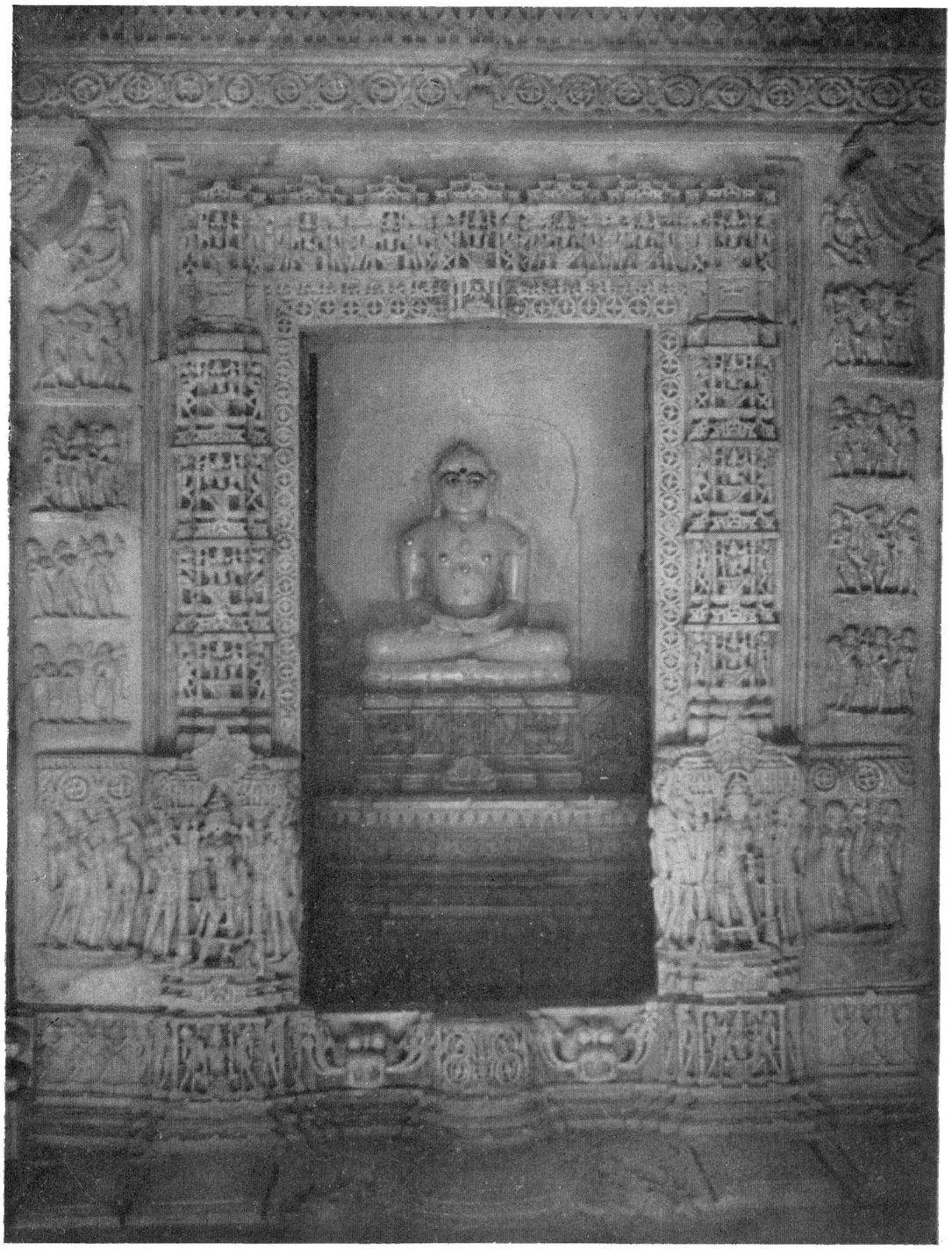

गर्भद्वार, विमल-वसही, आबु, बारमी सदी

Ornamental entrance of cell, Vimal-Vasahī, (Ābu), 12th Century

तसवीर : श्री० जगन महेता]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

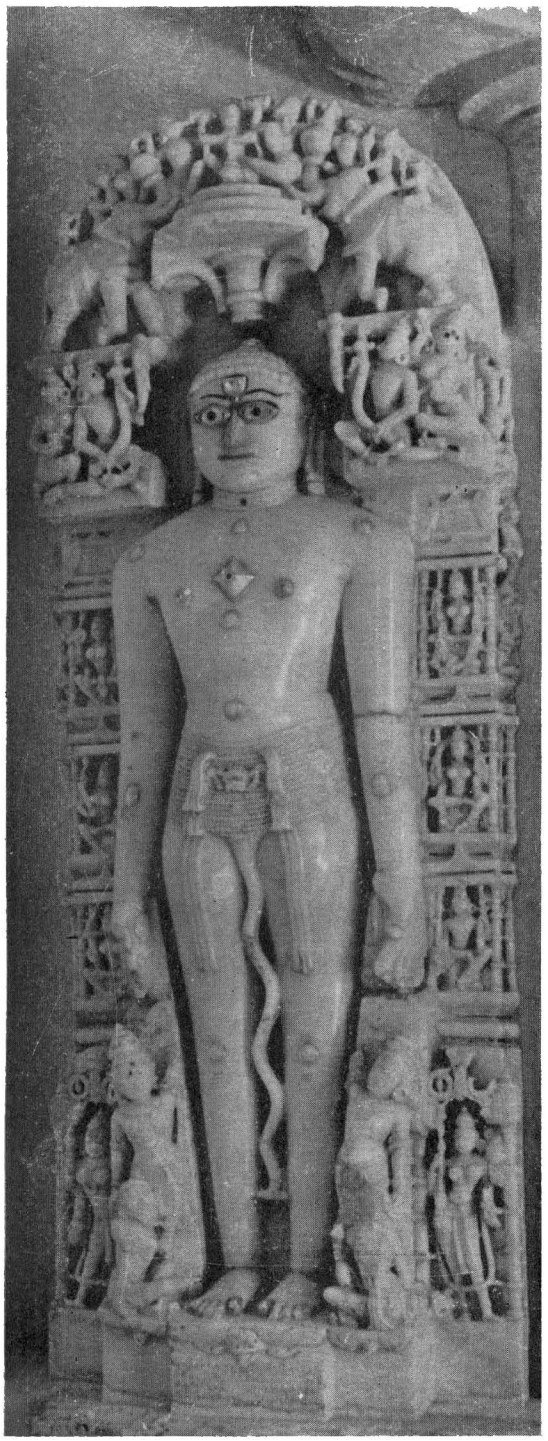

कुंभारियाजीना पार्श्वनाथ भगवानना देरासरमां अजितनाथ भगवान कायोत्सर्ग मुद्रामां
नीचे सं. ११७६नी सालेनो लेख छे.

Image of Ajitnātha in Kāyotsarga Mudrā in Pārśvanātha temple, Kumbhāriā, N. Guj., bearing inscription of V.S. 1176

तसवीर : श्री० आर० भारद्वाज]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

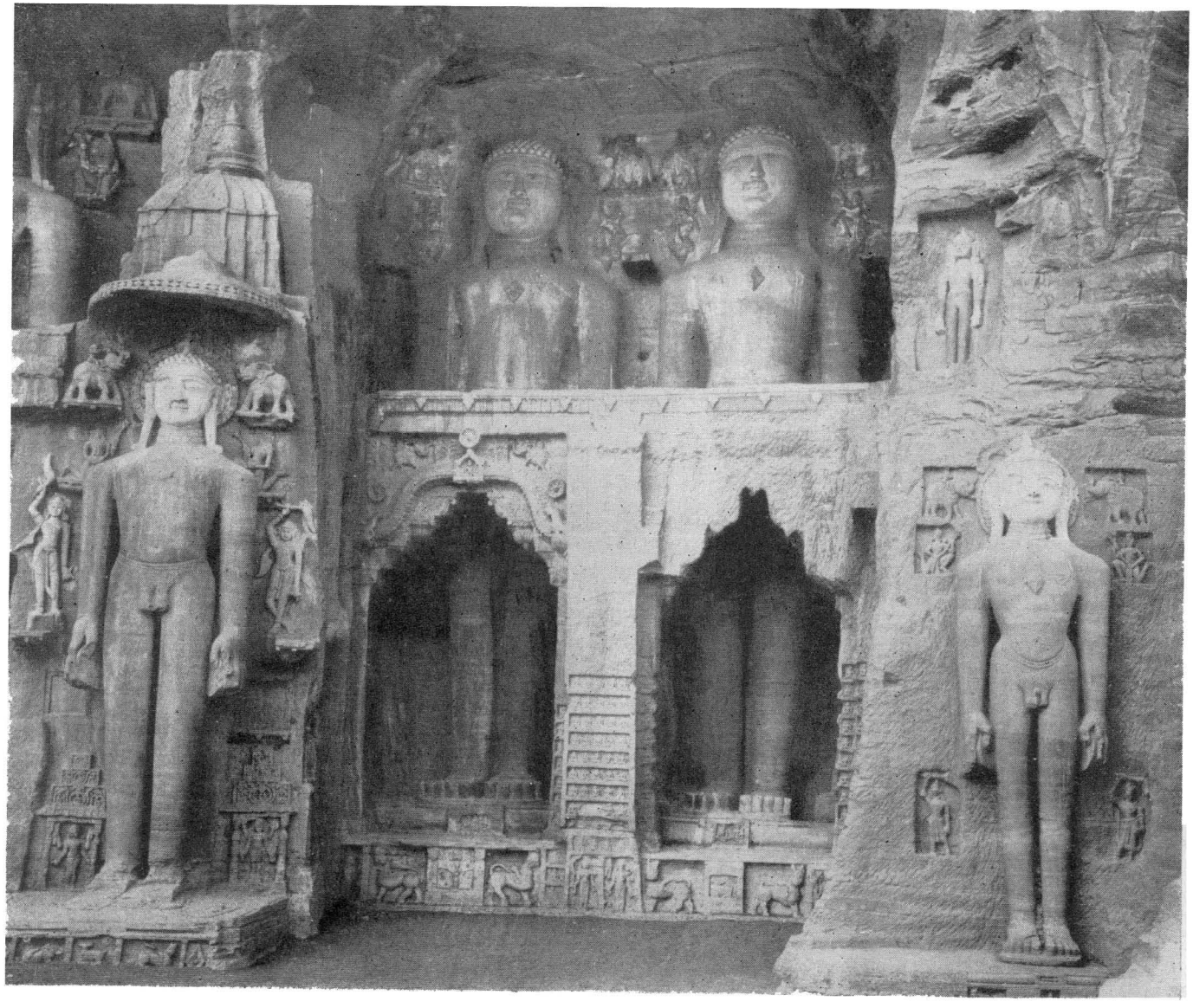

भव्य जैन शिल्पमूर्तिओ, ग्वालियर

Colossus Jaina sculptures on the rock of Gwālior Fort

[कॉपीराइट : आर्किओलॉजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया]

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

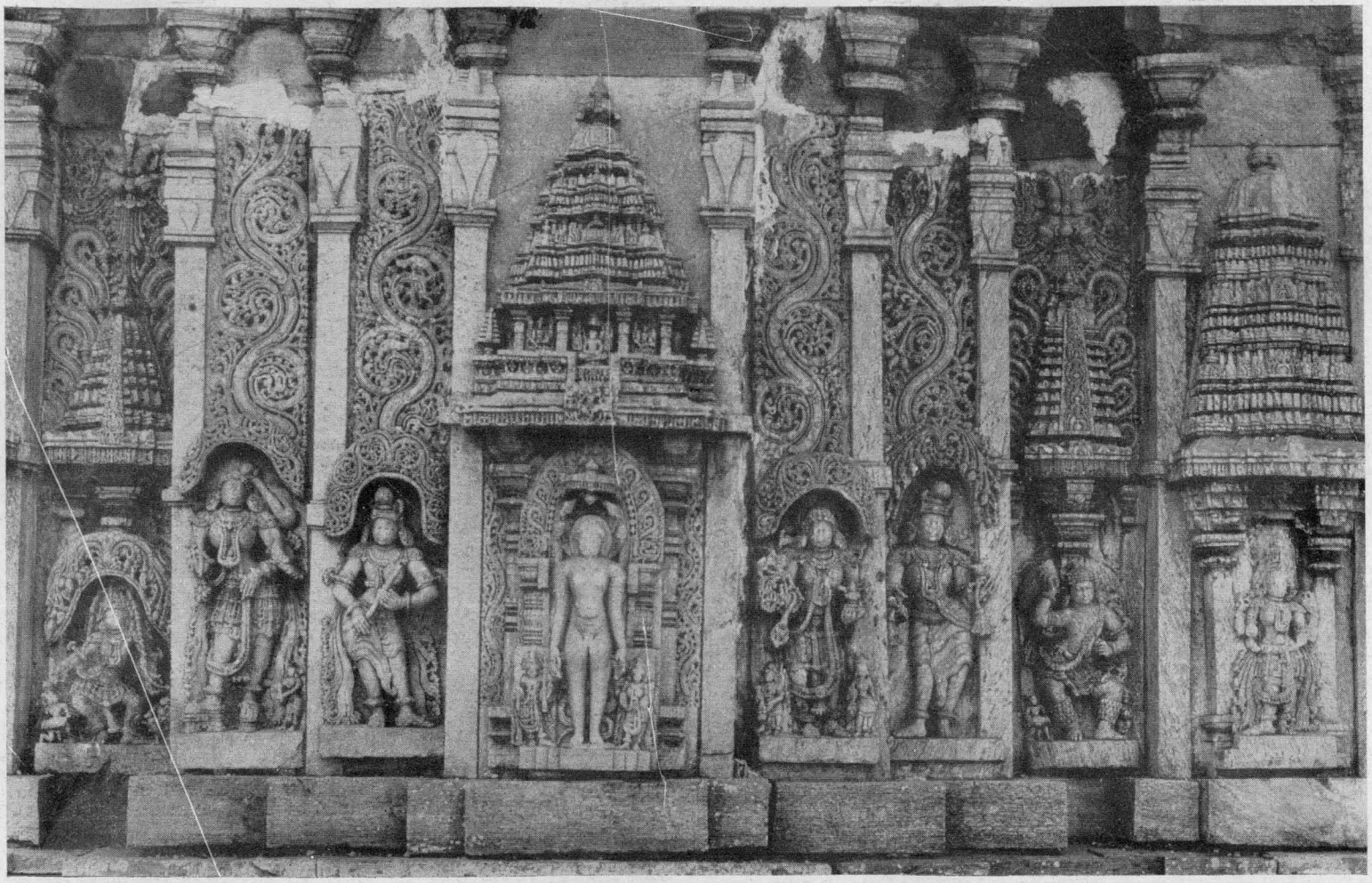

शान्तिनाथ बस्तीनी दिवालपर आवेली शिल्पसमृद्धि, जिनानाथपुर

Sculptures on the north wall of Śāntināth̄a Basti, Jinānāthpur

कॉपीराइट : आर्किओलॉजिकल डिपार्टमेंट ऑफ इंडिया]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लूणवसही–आबु : स्तंभो परना गणधरो : तेरमी सदी
Pillar bracket dwarfs, Lūṇa-Vasahī, Ābu, c. 13th Century

तसवीर : श्री० जगन मेहता]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेठ हठीसिंगे बन्धावेल जिनप्रासादनी दीवालपरनी कलामय शिल्पमूर्ति, अमदावाद, (१९मी सदी)
Reliefs on the walls of Hathising temple, Ahmedabad, 19th Century

तसवीर : श्री० आर० भारद्वाज]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

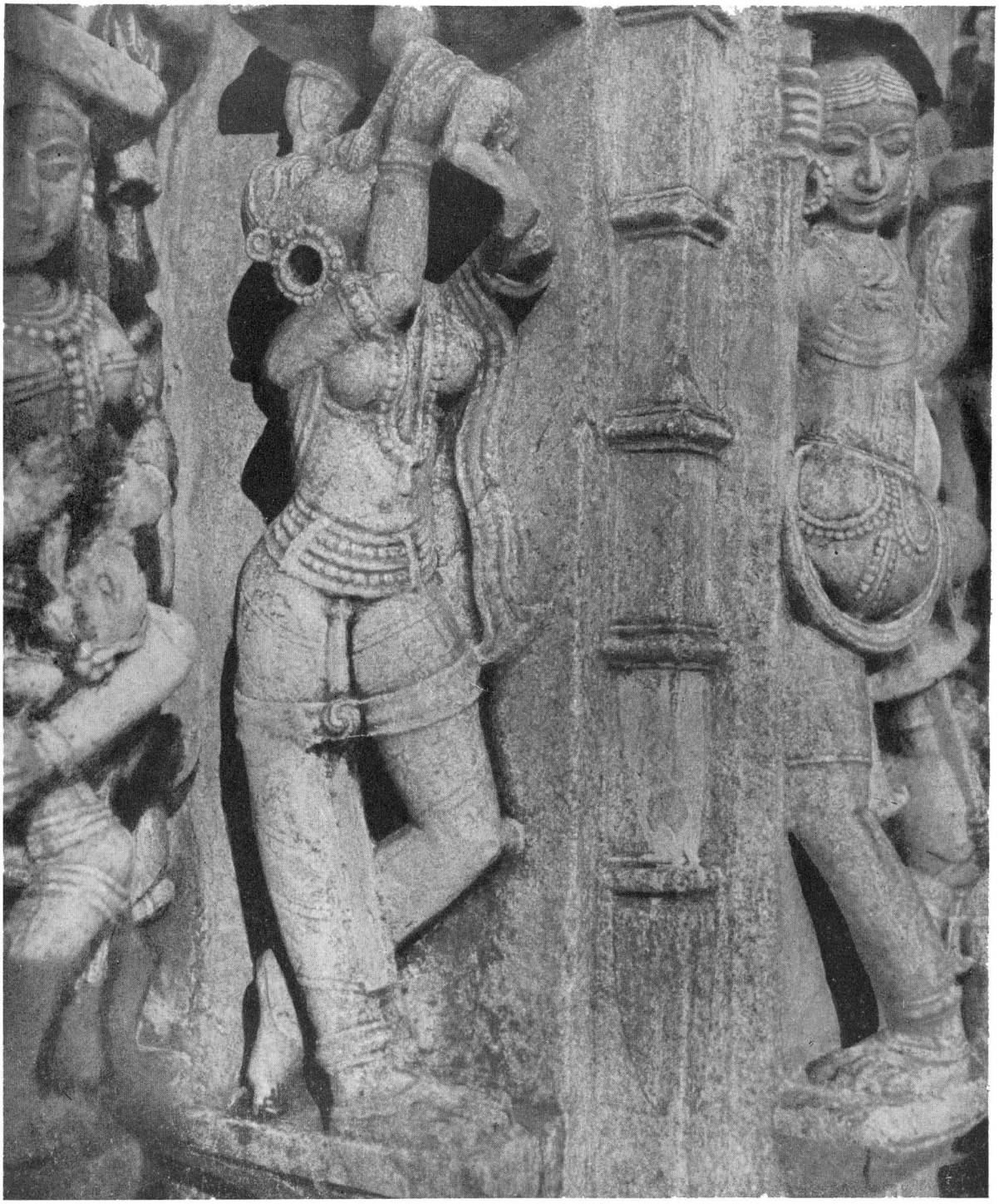

राणकपुरना चतुर्मुख जिनप्रासादनी दीवालोपरनी शिल्पसमृद्धि, १५मी सदी

Female figures on the walls of the temple at Rāṇakpur, 15th Century

तसवीर : श्री० आर० भारद्वाज]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org